International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 953-954

रजतोपदेशमहाकाव्य में प्रतिपादित माता–गुरु–ईष–शास्त्रश्रद्धा : एक विमर्श

दीनदयाल सैनी[1], डॉ. सूर्यनारायण गौतम[2]
[1] शोधार्थी, संस्कृत विभाग, श्री जे.जे.टी. विश्वविद्यालय, झुन्झुनूं, राजस्थान, भारत।
[2] एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला विश्वविद्यालय, झुन्झुनूं, राजस्थान, भारत।

सारांश
साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं जो उसके स्वरूप का बोध कराये। वह मार्गदर्शक भी है जो उसके कर्त्तव्य का बोध भी कराता है। आज समाज में उन नैतिकमूल्यों का ह्रास हो रहा है जिससे समाज में नित नई कुरीतियां फैल रही हैं। आज समाज का प्रत्येक युवक प्रायः नास्तिक सा होता दिखाई दे रहा है। यदि आस्तिकता कुछ झलकती भी है तो वह भी केवल स्वार्थ के वशीभूत होकर ही। संसार के सारे रिश्ते–नाते केवल स्वार्थ पर टिके से दिख रहे हैं। ऐसे में रजत मुनि के जीवन चरित्र पर आधारित महाकवि शम्भुदयाल पाण्डेय द्वारा विरचित रजतोपदेश महाकाव्य भारतवर्ष के उन समस्त भटके हुए युवाओं को कर्त्तव्यबोध करायेगा जिससे एक नवीन एवं स्वस्थ समाज का निर्माण हो सकेगा। प्रस्तुत शोध आलेख में कुछ ऐसी ही विचारधाराओं का चिन्तन किया गया है।

मूल शब्द : माता, गुरु, ईष, शास्त्रश्रद्धा।

प्रस्तावना
सृष्टि में श्रेष्ठता की परिधि में जिन्हें स्थान दिया गया है, उनमें माता, गुरु, ईष्वर तथा शास्त्र श्रद्धा का स्थान महत्व पूर्ण है। माता की उत्कृष्टता, वात्सल्य परायणता, कष्ट – सहिष्णुता को रेखांकित करते हुए महाकवि ने लिखा है कि इस लोक में माता के सदृष अन्य कोई दूसरा हितकारी नहीं है। सभी लोग अपने प्रयोजन की सिद्धि के वषीभूत होकर, वित आदि की लोलुपतावषं ही ऐष्वर्य सम्पन्न जन की सेवा किया करते है। धनरूप प्रयोजन को ध्यान में रखकर ही मित्र, पुत्र, प्रियवधू एवं अन्य प्रियजन अपने से बड़े लोगों की सेवा किया करते है, धन क्षीणता होने पर कोई हाल – चाल भी नही पूदता है। जबकि माता निःस्वार्थ सदैव हित चिन्तनरत रहती हुई अपनी महनीय सेवाएं प्रदान करती है। यथा–

एतस्मिन् भुवने तु मातृसदृशो नान्यो हितैषी परः
सर्वे स्वार्थपरायणा धनधिया सेवन्त एवेश्वरम्।
वित्तार्थं सृहृदः सुतः प्रिय वधूस्तातं भजन्ते प्रियः
क्षीणे तद्विभवे तु के पुनरमी पृच्छन्ति वार्तामपि।।[1]

मातृ ऋण से कोई सन्तति मुक्त नहीं हो सकता। ऐसी समृद्धि प्रदायिनी माता का तिरस्कार, अपमान करना – अत्यन्त लज्जास्पद है, कष्टप्रद हैं इन सभी सत्यों एवं तत्थों का ध्यान में रखते हुए करुणासागर वेद भगवान् ने 'मातृ देवों भव' का मानव मात्र को सन्देष दिया है। [2]
भगवान् श्रीरामचन्द्र तथा श्रीकृण ने अपने पवित्र चरित्र से माता के प्रति अत्यन्त आदरभाव प्रदर्षित कर हमें माता के प्रति श्रद्धावनत रहने की शिक्षा दी है।[3]
गुरुगरिमा किसी से छिपी हुई नहीं है। गुरु इतने उदारचेता है कि ज्ञानरूपी अञजन शलाका से अन्तष्चक्षुओ को खोलकर अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर देते है। ज्ञान – शक्ति को स्फुरित करने वाले गुरुरदेव लोक स्रष्टा ब्रह्म, विवेकबुद्धिप्रदाता विष्णु तथा कल्याणप्रद उपदेष्टा शिव स्परूप है। अतः समस्त लोको में सर्वश्रेष्ठ, परमश्रद्धास्पद गुरुचरणो में सादर प्रणाम –

गुरुर्ब्रह्मा विष्णुर्भुवनजनको रक्षणपरः

रुः साक्षाच्छम्भुः शिवसुखमनन्तं ह्मुपर्दिशन्।
स विसष्वस्मिल्लो के धृतवर तनुब्रह्म परमम्।
नमस्तस्मै नित्यं भुवनगुरवे दिव्यवपुषे।।[4]

गुरु के प्रति श्रद्धाभाव से मनुष्य तेजस्विमता प्राप्त करता है, जीवन में सतत निखार आता है। गुरु के प्रसन्न होने पर अनायास देवगण भी प्रसन्न हो जाते किन्तु गुरु के रुष्ट होने पर भाग्य भी अपनी दिशा–दशा बदल देता है –

गुरौ तुष्टेऽत्यन्तं स्वयमिह तु तुष्यन्ति विबुधाः
गुरौ रुष्टे शीघ्रं भवति विपरीतो वर विधिः।
गुरौः प्रीत्या मूढः कवयति सुशास्त्रं रचयति,
समीक्ष्यैवं विज्ञस्त्यजति न गुरोंः पादयुगलम्।।[5]

महाकवि ने लिखा है कि गुरु के समुद्र के समान अगाध गुणों का वर्णन सम्भव नहीं है।

गुरोस्तच्चं गूढं शतमपि मुखे स्युष्च रसनाः
मदायुर्देवानामवनिरखिला कर्गलमयी।
भवेयुर्लेखिन्यः सकलतरवः सागरमसिः
ततो नान्तं यायाद् गुरुगुणमपारं जलधिवत्।।[6]

ईष्वर के प्रति आस्था, अनन्त श्रद्धा विनम्रता होने के कारण मानव जीवन की महनीयता वृद्धिगतं होती है। राग–द्वेष, क्रोध – मान – माया – लोभ आदि कषायों की जहरीली बेल को जड़मूल से उन्मूलित करने वाले बीतराग प्रभु देवेन्द्र नरेन्द्र आदि से सतत वन्दित है।
रागद्वेष की जहरीली बेल यदि जीवन में निरन्तर फैलती है तो जीवन ही जंजाल बन जाता है। जीवन में शान्ति नहीं रहती, सुख नष्ट हो जाता हैं मनुष्य बेचैन हो जाता हैं अशान्ति, उद्वेग का

शिकार बन जाता हैं क्रोध का दावानल धधकने लगता हैं अत एवं सर्वज्ञ वीतराग प्रभु ने कषाय वल्लरी को उखाड़ कर फेंक दिया है। परिणामतः देवराज इन्द्र तथा बडे–बडे राजा–महाराजा भी प्रभु के चरण–कमलों में सादर वन्दन करते है। जीवन में प्रभु के चरणकमलों के प्रति भक्तिभाव का ही महत्व है, धन–वैभव या राज–पाट का नहीं है। महत्व, त्याग का है।

प्रभु वीतराग, सत्यस्वरूप है, चैतन्यस्वरूप है अनन्त आनन्द स्वरूप हैं वे कालातीत है, कालत्रयी के सम्पूण्र ज्ञान की सतत एक कालावच्छेदेन जानते है। सर्वहितकारी, परम कल्याण कारी उत्कृष्ट करुणावरुणालय पर ब्रह्मपरमात्मा वीतराग प्रभु को सादर वन्दन करते हैं।[7]

सच्चिदानन्द रूपं तं, ब्रह्मानन्दं हितकंरम्।
अहं तु शिरसा वन्दे, करुणासागरं परम्।।[8]

सत्यस्वरूपी, चित् स्वरूपी आनन्द स्वरूपी प्रभु यदि हमारे आराध्य है तो जीवन सहज ही निष्कंटक हो सकता है। जीवन की बाधारूपी बेडियां एक–एक करके टूट सकती है। आवष्यकता है, श्रद्धा की प्रभु चरणों में समर्पण की। श्रद्धा – भक्ति पूर्वक प्रभु के चरणारविन्दों में किया गया वन्दन भी चन्दन के समान हमारे जीवन की जलन मिटा कर शान्ति – शीतलता की अनुभूति कराता हैं।

मानव–जीवन की महत्ता एवं उपयोगिता को विधिवत् जानकर, समझ कर पूर्ण श्रद्धावनत भाव से प्रभु के चरणों में वन्दन करें। सदैव ध्यान रहे–विनम्रता उत्थान की सीढी हैं।

रजतपोपदेश महाकाव्य का तृतीय सर्ग वीतराग वैभवम् प्रभुवन्दन, भक्तिभाव का निदर्शन है, इस में 102 श्लोक अनुष्टुप छन्द में अनुप्रास –उपमा रूपका लंकार आदि से मझित है तथा अन्तिम श्लोक आर्या में निबद्ध है।

आर्ष – परम्परा के दिव्यज्ञानियों ने अलौकिक शास्त्रों की सूचना की है तथा उनके पुनीतमार्ग का अनुसरण करते हुए अथक प्रयास करते हुए आज भी निरन्तर शास्त्र रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए श्रमषील है –

मुनीश्वरा ज्ञानधना विचक्षणाः
चक्षिरे शास्त्रस्वरूपमदभुतम्
तथापि नान्ये विरमन्ति सूरयो
निजानुमूल्या प्रथयेन्त्यनारतम्।।[9]

शास्त्र, त्रिलोकी के अनुशासनार्थ प्रवृत हुए है। शास्त्र के बिना न तो अनुशासन सम्भव रहा है न भविष्यत्काल में सम्भाव्य हैं शास्त्र के प्रति सच्ची श्रद्धा रखते हुए ही कार्यप्रवृति यदि शास्त्र के विरुद्ध होती है तो वह भयावह है। अन्ततो गत्वा पीडादायक तथा पतनकारके है। अतएव शास्त्रानुशासन के प्रति सश्रद्ध रहनाजीवनोत्कर्ष दायक है–

जगत्त्रयं येन सदैव शिष्यते, तदेव शास्त्रं जगदुर्विपष्चितः।
ऋतेहि शास्त्रान्न कुतोडपिशासनं, नवा पुराडभूद् भविता न कर्हिचित्।।[10]

भगवान् श्री कृष्ण में श्रीमद् भगवद् गीता में शास्त्रमहिमा बताते हुए स्पष्ट किया है कि जो व्यक्ति, शास्त्रविधिको त्याग कर अपनी इच्छा से मनमाना आचचरकरता है वह न सिद्धि प्राप्त होता है, न परम गति और न सुख को ही।[11]

भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि इस संसार में क्या कर्तव्य है? क्या अकर्तव्य है? इस प्रकार का संषयात्ज्मक अज्ञान होने पर सदैव शास्त्रीय प्रामाणिकता ही श्रेयस्करी है। क्योंकि कर्तव्य औश्र अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा विधिवत ज्ञान कर शास्त्र विधि का पालन करते हुए नियत कर्म करणीय है।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्त कर्म कर्तु मिहार्हसि।।[12]

शास्त्र, यथार्थ वक्ता आप्तपुरुषो की जनकल्याणी वाणी के रूप में व्यवस्थित है। आप्तोपदेश सदैव मंगलकारी है–यह मानकर सभी मनुष्य अपनी सन्तान को शास्त्रीय ज्ञानार्जन करवाते है। क्योंकि शास्त्रीय ज्ञान से ही दिव्यनेत्र प्राप्त होते है।[13] शरीरधारी मनुष्य के लिए शास्त्र दिव्यनेत्र है, उन पर किसी की कोई विशेष अधिकारिता नहीं है। कोई भी श्रद्धापूर्वक विधिवत शास्त्रीय अध्ययन करके दिव्य ज्ञान रूपी तृतीयनत्र प्राप्त कर सकता है।

शास्त्रीय दिव्य ज्ञान दृष्टि की शक्ति कभी क्षीण नहीं होती है। नष्ट नहीं होती है। इस दिव्य सामर्थ्य का खण्डन–मंनन भी सम्भव शास्त्र – श्रद्धा रखते हुए शास्त्र वर्णित विधि के अनुसार क्रियाषील व्यक्ति सदैव सफलता के षिखर की ओर अग्रसर होता है। शास्त्रीय श्रद्धावान् जीवन में आने वाली विध्न–बाधाओं को शास्त्रीय समाधान के बल पर सहसा पार कर लेता है। जीवन को ज्योतिर्मय भास्वर बनाने में शास्त्रश्रद्धा सर्वोपरि महत्व रखती है।

सन्दर्भ

1. रजतोपदेषमहाकाव्यम 2/1
2. रजतोपदेषमहाकाव्यम 2/6
3. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 2/7–9
4. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 2/12
5. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 2/18
6. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 2/22
7. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 3/2
8. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 2/18
9. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 12/1
10. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 12/3
11. श्रीमद्भगवद्गीता 16/23
12. श्रीमद्भगवद्गीता 16/24
13. रजतोपदेषमहाकाव्यम् 12/15